RICERCA, INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH AND INNOVATION
ISSN:2583-083X
VOLUME 1 ISSUE 3 (OCTOBER 2021)

कला, सौन्दर्य व प्रकृति का अनूठा संगम – किशनगढ़ शैली

डा. दीपा कौशिक
एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास
राजकीय कन्या महाविद्यालय
राजगढ़ (चूरू)

राजस्थानी चित्रकला शैली एक रंगीन और कालातीत कला शैली है, जो यहां की समृद्ध सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को दर्शाती है। राजस्थान में प्राचीनकाल से ही चित्रकला की वैभवशाली परम्परा विद्यमान थी जो अनेक उतार–चढ़ावों के बाद आज भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये हुये है। रामगोपाल विजयवर्गीय के अनुसार ष्राजस्थानी चित्रकला स्थानीय परम्पराओं और जनजीवन से जुड़ी होने के कारण मुगल आश्रय समाप्त होने के बाद भी जीवित रही। जयसिंह नीरज के शब्दों में 'राजस्थानी चित्रकला कृष्णकाव्य के भावों का चित्रांकन करने में अधिक सफल रही है। इनमें भित्तिचित्र, पटचित्र, पोथीचित्र प्रमुख हैं, जिनको आज भी देखा जा सकता है।'

मुख्य शब्द : किशनगढ़ शैली, नागरीदास, निहालचंद, बनी–ठनी, वल्लभ सम्प्रदाय।

राजस्थान चित्रशैली का क्षेत्र अत्यंत समृद्ध है। आहड़, बैराठ, रंगमहल आदि स्थानों पर की गई खुदाई से प्राप्त सामग्री से यह प्रमाणित हो चुका है कि राजस्थान में चित्रकला की वैभवशाली परम्परा विद्यमान थी। सातवीं तथा आठवीं सदी के चित्रकारों ने अजन्ता शैली में स्थानीय मौलिक शैलियों को सम्मिलित कर राजस्थानी चित्रकला में एक नवीन परिवर्तन ला दिया। राजस्थानी चित्रकला पर प्रारम्भ में जैन शैली, गुजरात शैली और अपभ्रंश शैली का प्रभाव बना रहा, किन्तु बाद में राजस्थान की चित्रशैली मुगल काल से समन्वय स्थापित कर परिमार्जित होने लगी। सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के प्रसार और राजपूतों के साथ बढ़ते राजनीतिक व वैवाहिक सम्बन्धों

ISSN:2583-083X
VOLUME 1 ISSUE 3 (OCTOBER 2021)

के कारण राजपूत चित्रकला पर मुगल शैली का प्रभाव बढ़ने लगा लेकिन कार्ल खण्डालवाला ने 17वीं और 18वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल को राजस्थानी चित्रकला का 'स्वर्ण युग' कहा है। आगे चलकर अंग्रेजों के बढ़ते राजनैतिक प्रभाव एवं लड़खड़ाती आर्थिक दशा से राजस्थानी चित्रकला को अवश्य आघात लगा लेकिन कला किसी न किसी रूप में जीवित रही और अन्तरात्मा की तह तक पहुँची।

भौगोलिक व सांस्कृतिक आधार पर हम राजस्थानी चित्रकला को चार स्कूलों में विभक्त कर सकते हैं। एक स्कूल में एक से अधिक उपशैलियां हैं। जैसे –

1) मेवाड़ चित्रशैली – चावंड, उदयपुर, नाथद्वारा, देवगढ़ आदि।

2) मारवाड़ चित्रशैली – जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ आदि।

3) हाड़ौती चित्रशैली – बूंदी, कोटा आदि।

4) ढूंढाड़ चित्रशैली – आमेर, जयपुर, अलवर, उनियारा, शेखावाटी आदि।

राजस्थान की विभिन्न चित्रशैली इन उपरोक्त शैलियों का समन्वित रूप है। राजस्थानी चित्रकला की मौलिक अस्मिता है, लोकजीवन का सानिध्य, भाव प्रवणता का प्राचुर्य, विषयवस्तु वैविध्य, प्रकृति परिवेश, देश–काल के अनुरूप इसकी अपनी पहचान है। धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों से पोषित चित्रकला में लोकजीवन, भक्ति और श्रृंगार का सजीव चित्रण तथा चटकीले, चमकदार और दीप्तियुक्त रंगों का संयोजन अति विशिष्ट है। ये चित्र पीढ़ियों से चले आ रहे शाही इतिहास, पौराणिक कथाओं, मंदिरों व हवेलियों की परम्पराओं के सार को समेटे हैं। राजस्थानी चित्रकारों ने विभिन्न ऋतुओं का श्रृंगारिक चित्रण किया है, प्रकृति का मानवीकरण देखने को मिलता है। चित्र में जो भाव नायक के मन में रहता है, उसी के अनुरूप प्रकृति को भी प्रतिबिम्बित किया गया है।

जहां मुगल काल से प्रभावित राजस्थानी चित्रकला में राजकीय तड़क भड़क, विलासिता अन्तःपुर के दृश्य एवं झीने वस्त्रों का प्रदर्शन मुख्य रूप से है वहीं राजस्थानी कला में हिन्दू देवी देवताओं, लोक कथाओं, गृहस्थ जीवन की अधिक अभिव्यक्ति मिलती है। नारी सौन्दर्य को चित्रित करने में राजस्थानी चित्रशैली के कलाकारों ने विशेष सजगता दिखाई है।

गोपीनाथ शर्मा ने राजस्थानी चित्रकला को 'भारतीय अक्षय कला निधि का एक कोष तथा युग–युगान्तर की संस्कृति का मापदण्ड' माना है।

किशनगढ़ शैली

किशनगढ़ शैली राजस्थानी चित्रकला की 'मारवाड़ स्कूल' की बेहद महत्वपूर्ण व विश्व प्रसिद्ध उपशैली है। इस शैली का सुन्दरता व रोचकता की दृ ष्टि से अपना एक स्वतंत्र एवं महत्वपूर्ण स्थान है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में आध्यात्मिक भक्ति, काव्य–कला का संयोजन और रंग रेखाओं का लालित्य मुखरित हुआ है। राजस्थान की ललित कला प्रतिभा सम्पन्न व गरिमामय है जो स्वयं सांस्कृतिक एकता की सूचक है और युगों से भारतीय परम्पराओं से जुड़ी है। जब किसी कला का आधार आध्यात्मिक होता है तो यह कला आन्तरिक सहजता का ही परिणाम होती है। इस शैली को प्रकाश में लाने का श्रेय एरिक डिक्सन एवं फैयाज अली को है।

किशनगढ़ राज्य की स्थापना सन् 1609 ई. में जोधपुर के राजा उदयसिंह के पुत्र किशन सिंह ने की थी। उन्हीं के नाम पर इस कला शैली का नाम पड़ा। स्थापना के समय से ही यहां चित्रकला की परम्परा का परिचय मिलता है। किशन सिंह के उत्तराधिकारियों ने भी इस चित्रकला को संरक्षण दिया, लेकिन इस शैली का समृद्ध रूप राजा सावंत सिंह (1748–1757) उर्फ नागरीदास के शासनकाल में देखने को मिलता है। उसने सर्वप्रथम किशनगढ़ में चित्रशाला की स्थापना कर यहां की परम्परागत शैली को नया रूप दिया।

कार्ल खण्डालवाला किशनगढ़ शैली का उदय ही नागरीदास के काल से मानते हैं। वस्तुतः किशनगढ़ शैली के परम्परागत रूप को स्वतंत्र, परिपक्व और आकर्षण रूप इसी काल में प्राप्त हुआ। सावंतसिंह एक उच्च कोटि के कवि, लेखक और चित्रकार होने के साथ–साथ कट्टर वैष्णव अनुयायी थे। वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव होने के कारण इस समय राधा–कृष्ण के चित्र अधिक बनते थे। सावंतसिंह के मन में 'बनी–ठनी' नामक दासी के रूप पर मोहित हो चुके थे। उसके प्रेमी बन गये थे। अपने प्रेम का वर्णन उन्होंने राधा कृष्ण के प्रेम के रूप में किया। वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव होने के कारण इस समय राधा कृष्ण के चित्र अधिक बने। नागरीदास के कलात्मक व्यक्तित्व ने किशनगढ़ शैली को एक नवीन रूप दिया। उसमें सौन्दर्य के प्रति अपूर्व जिज्ञासा के साथ ही साथ भावुक हृदय की भक्ति भावना भी थी। नागरीदास राजा होते भी राज्य लिप्सा से बहुत दूर थे। किशनगढ़ शैली में प्राण फूंकने वाले नागरीदास भावुक, कला मर्मज्ञ तथा राधा माधव के युगल रूप के भक्त थे।

नागरीदास को 'मोरध्वज निहालचंद' नामक एक श्रेष्ठ चित्रकार भी मिल गया। जिसने नागरीदास और 'बनी–ठनी' के प्रेम में राधा कृष्ण की अनुभूति करते हुए अनेक चित्र बनाये। राधा के रूप में बनी–ठनी को चित्रित किया गया। किशनगढ़ शैली में वस्त्रों, लहंगा, कंचुकी और पारदर्शी ओढ़नी वस्त्राभूषणों से युक्त कोमल काया का नयनाभिराम अंकन नारी के रूप यौवन को प्रदर्शित करता है। सुकुमार अंगुलियों में अर्धविकसित कमल ककलिंगा लिये 'बणी–ठणी' अपने सौन्दर्य को उजागर करती है। कांगड़ा के चितेरों ने जिस प्रकार नारी छवि का मनोरम अंकन कर अपनी कला को निखारा है ठीक वैसी ही नारी का अनुपम सौन्दर्य किशनगढ़ शैली की महता है। लघु चित्रों में कृष्ण एवम् राधा के आध्यात्मिक प्रेमाकर्षण तथा लीलाओं की एक ऐसी शैली ने जन्म लिख जो अपनी भव्यता के लिए विश्व प्रसिद्ध है। फलस्वरूप राधा का यह स्वरूप एक ऐसा नमूना बन गया कि आगे के समय में बनने वाले राधा के चित्र उसी नमूने पर बनने लगे।

किशनगढ़ शैली की राधा के चित्र में उनकी सुन्दर वेशभूषा, नुकीली नाक, पतली कमर, खंजन के समान आंखें, चाप समान भृकुटी, पतले होठ, सुकोमल अधर, कोणीय चेहरा आदि नारी सौन्दर्य को अन्य से भिन्न व अनोखा बनाते हैं। 1757 के आसपास बना 'बनी–ठनी' का चित्र इन्हीं विशेषताओं से युक्त है। नारी के इस रूप में माधुर्य, कोमलता, चंचलता तथा नारीत्व के भावों को प्रमुखता दी गई। इन चित्रों में स्त्रियां लता के समान लचकदार व छरहरी काया वाली व लम्बी बनाई गईं। इस प्रकार निहाल सिंह के काल में किशनगढ़ शैली की आकृतियां राजस्थान की अन्य शैलियों से भिन्न रूप में विकसित हुईं। बनी–ठनी के रूप में इस शैली को नवीन प्रेरणा, नवीन विकास और कोमलांगी नारी चित्रण की चेतना मिली।

निहालचंद की कलम में अलंकरण भी था और पारदर्शी रंग, पक्का रेखण और श्रेष्ठ वर्गीकरण के माध्यम से निहालचंद ने राजस्थानी चित्रकला को मोहक कला के शिखर पर पहुंचा दिया। उसके चित्रों में कला प्रेम और भक्ति का एक अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है। उसके द्वारा प्रतिपादित शैली 19वीं शताब्दी तक फलती फूलती रही।

राजस्थानी लघु चित्र शैली में राग–रागिनियों जैसी संगीत की मान्यताओं पर आधारित चित्रण विशेष रूप से दिखाई देता है। कलाकारों ने नदी को दर्शाने हेतु चाँदी के रंग का प्रयोग किया है।

निहालचन्द द्वारा बनाये गये अन्य चित्रों में कृष्ण लीला का चित्र अत्यन्त मोहक है। निहालचन्द के चित्रों में भावों की सूक्ष्मता, मनोवैज्ञानिक निरीक्षण, दृ ष्टि का पैनापन व मानव रूप की पराकाष्ठा दिखाई देती है। किशनगढ़ शैली का विकास दरबारी कला के रूप में हुआ, फिर भी इस शैली के चित्रों में विषयों की विविधता है। किन्तु सावंतसिंह के समय से राधा और कृष्ण चित्रकार के प्रिय विषय बन गये। इसके अलावा 'बिहारी चन्द्रिका', 'भागवत पुराण' तथा

'गीत गोविन्द' पर आधारित अनेक चित्रों का अंकन हुआ। कुछ चित्रों में कृष्ण व गोपियों को कदम्ब के वृक्षों के आसपास चित्रित किया गया है।

इसी प्रकार एक श्रेष्ठ चित्र 'दीपावली और दीप' नामक चित्र भी श्रेष्ठ है, जिसमें कृष्ण और राधा एक सुंदर सिंहासन पर विराजमान हैं तथा मध्य में गोपी नृत्य कर रही है। दायें और बायें चार गोपियां खड़ी हैं, पानी में दो बतखें तैर रही हैं। सारा चित्र मानो दीपावली की रोशनी से जगमगा रहा है। 'संगीत गोष्ठी' नामक चित्र में संगीत और नृत्य का सुंदर चित्रण है। चित्रों में गुंडालिया झील, कमल के फूल, तैरते हंस, घनी रात, चांदनी रात कला व सौंदर्य को पूर्णता प्रदान करते हैं। स्पष्ट है कि इस शैली के चित्रों के विषय ब्रज भाषा काव्य से प्रेरित हैं। सावंत सिंह के अतिरिक्त दरबार में सीताराम, अमरचन्द, सूरध्वज आदि चित्रकारों ने श्रेष्ठ व्यक्ति चित्र, दरबार तथा आखेट के चित्र बनाये।

पृथ्वी सिंह के शासनकाल (1840-1880 ईस्वी) में 'गीत गोविन्द' के अनेक चित्र बने। अभी भी चित्रकार निहालचन्द के स्त्री आकारों की परम्परा निभाते रहे। 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में इस शैली की कृतियों में कोमलता के स्थान पर कठोरता आने लगी थी।

किशनगढ़ शैली की विशेषतायें

किशनगढ़ के चित्रकारों ने रंगों व रेखाओं का जादू इस प्रकार बिखेरा कि दर्शक देखता रह जाता है। किशनगढ़ शैली के चित्रों में प्रायः पीला, लाल, नीला, हरा, काला, सफेद और सोने-चांदी के अमिश्रित रंग का प्रयोग किया गया है। काले रंग की पृष्ठभूमि में सुनहरे रंगों का प्रयोग चित्र को अत्यधिक आकर्षक बना देता है।

इस शैली की मानव आकृतियां राजपूताना की अन्य शैलियों से भिन्न हैं। विशेष रूप से स्त्री आकृतियां लतिका समान लचकदार, लम्बी और छरहरे शरीर वाली बनाई गयी हैं। किशनगढ़ शैली की प्रमुख विशेषता नारी सौन्दर्य ही है।

ISSN:2583-083X
VOLUME 1 ISSUE 3 (OCTOBER 2021)

स्त्रियों के चेहरे पतले और कोमल हैं। चिबुक के नीचे गर्दन तक के भाग का पतला आकार सौन्दर्य में वृद्धि कर देता है। नेत्र कमल या खंजन के आकार में बने हैं जिनकी रेखाएं कर्णोन्मुखी हैं। अधर बिबाफल के समान लाल और ऊपर की ओर उठे हैं। स्त्रियों का पहनावा लहंगा–चोली और पारदर्शी आंचल है। स्त्रियों के गले, सिर, हाथों, कान तथा नाक में आभूषण बनाये गये हैं जिनमें नाक की 'बेसरि' विशिष्ट प्रकार की है। पुरुषों के पहनावे में लम्बा जामा, कमर में पटका और सिर पर पगड़ी प्रमुख है। कभी–कभी धोती का भी प्रयोग किया गया है।

चित्रों का निर्माण सामान्यतया 'वसली' पर किया जाता था। वस्ली बनाने की अपनी विशिष्ट तकनीक है, जिसमें कागज के पतले पन्नों को गोंद से चिपकाकर आवश्यक मोटाई की वस्ली तैयार की जाती थी। तैयार वस्ली पर काले या भूरे रंग से रेखांकन किया जाता था तत्पश्चात उसमें रंग भरा जाता था। रंग मुख्य रूप से प्रकृति से प्राप्त खनिजों व बहुमूल्य धातुओं जैसे–सोना–चांदी से बनाये जाते थे जिन्हें चिपकाने के लिए गोंद मिलाया जाता था। गिलहरी के बालों का प्रयोग ब्रश बनाने के लिए किया जाता था। चित्रण कार्य पूर्ण होने पर अगेट पत्थर से उसे रगड़ा जाता था जिससे चित्र की ऊपरी सतह समतल, चमकदार और पूर्ण हो जाती थी। सावंतसिंह का काल (1699–1764 ई.) इस शैली का स्वर्ण युग माना जाता है।

इस शैली के चित्रों की रेखाएं कोमल, बारीक और भावपूर्ण हैं। रेखाओं में प्रवाह व गति है। चित्रों में आम, जामुन तथा केला आदि के वृक्षों से प्रकृति चित्रण किया गया है। इस शैली के पशु–पक्षी चित्रण मेवाड़ शैली के समान हैं। चित्रकला में उपयोग किये जाने वाले प्राकृतिक रंगों और सुंदर बॉर्डर की बारीकियां दर्शनीय हैं। मध्यकालीन राजस्थानी चित्रकला का कलेवर प्राकृतिक सौन्दर्य के आंचल में रहने के कारण अधिक मनोरम हो गया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि किशनगढ़ चित्र शैली केवल रंगों व रेखाओं का ही मिश्रण नहीं है वरन् कला, सौंदर्य व प्रकृति का एक ऐसा सजीव व भावपूर्ण संगम है जो कला प्रेमी की आत्मा को छूता है। इस शैली ने जहां एक ओर नारी सौंदर्य को 'बनी–ठनी' के रूप के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचाया, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के मनोरम दृश्यों, झीलों और पक्षियों को चित्रों में शामिल कर कला को एक जीवंतता प्रदान की। कलाकारों (विशेषकर निहालचंद) ने लौकिक प्रेम और आध्यात्मिक भक्ति का ऐसा सुंदर सामंजस्य तैयार किया जिसमें राजा सावंत सिंह और 'बनी–ठनी' का प्रेम, राधा–कृष्ण के शाश्वत प्रेम का प्रतीक बन गया।

कला समीक्षक एरिक डिकिंसन महोदय ने 'बनी–ठनी' को भारत की 'मोनालिसा' (लियोनार्डो द विंची कृत) की संज्ञा दी है। भारत सरकार ने 1973 में 'बनी–ठनी' पर डाक टिकट भी जारी किया है।

अंततः अपनी इसी अनोखी विशेषता, बारीक रेखांकन व प्रतीकात्मकता के कारण किशनगढ़ शैली न केवल राजस्थानी चित्रकला का गौरव है बल्कि विश्व कला जगत की अनमोल धरोहर भी। इस प्रकार 18वीं शताब्दी की राजस्थानी चित्रकला, निहालचन्द और उसके संरक्षक सावंतसिंह की सदा ऋणी रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) डा. रीता प्रताप – भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

(2) संपादक डा. हुकम चन्द जैन, डा. नारायण लाल माली – राजस्थान का इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य, परम्परा एवं विरासत, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

(3) डा. रामप्रसाद व्यास – आधुनिक राजस्थान का वृहत् इतिहास – खण्ड II, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

(4) भगवत् शरण उपाध्याय – भारतीय कला का इतिहास, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली।

(5) एम. एस. रन्धावा एवं डी. एस. रन्धावा – किशनगढ़ पेन्टिंग।

(6) डा. अविनाश पारिक – किशनगढ़ का इतिहास, Exotic India Art.

(7) राजेन्द्र वर्मा, रीता रावत – राजस्थान का इतिहास, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर।

(8) डा. कालूराम शर्मा, डा. प्रकाश व्यास – भारतीय संस्कृति के मूल आधार – पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

(9) पत्र पत्रिकाओं व शोध ग्रन्थों से प्राप्त सामग्री।